'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १४० | वाराणसी, शनिवार, ५ दिसम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

वसंतपुर (जम्मू-कश्मीर) २३-५-'५९

मेरा काम है यह समझाना कि 'एक-दूसरे पर प्यार करो'

अभी आप लोगों को कृष्णा बहन समझा रही थीं। उससे ज्यादा मैं नही समझा सकूँगा। क्योंकि यहाँकी जबान उन्हें मालूम है। मेरा काम बिलकुल छोटा-सा है। आप उसे सहज समझ सकते हैं और कर भी सकते हैं। मेरा काम है 'एक-दूसरे पर प्यार करो'–यह समझाना। आज हम गाँव में क्या करते हैं? एक साथ रहते हैं, पर एक-दूसरे पर प्यार नहीं करते। घर में भाभी, बहन, माँ हैं–बस, इन दो-चार पर हम प्यार करते हैं, उन्हीं-का खयाल रखते हैं। बाकी औरों का खयाल नहीं रखते। इसका नतीजा यह होता है कि गाँव में अच्छी चीज नहीं बनती। गाँव में जुलाहा है, बुनकर हैं। लेकिन उसका बुना हुआ कपड़ा गाँववाले नहीं खरीदते। वह कपड़ा बाहर जाता है। यह प्यार नहीं है। अगर गाँववाले एक-दूसरे से प्यार करते हों तो हमें तय करना चाहिए कि गाँव में जो कपड़ा बनेगा, वही हम खरीदेंगे और वही पहनेंगे। गाँव के चमार का ही जूता पहनेंगे। बुनकर का कपड़ा चमार पहने और चमार का जूता बुनकर खरीदे तो दोनों को एक-दूसरे की मदद होगी। आज वह मदद नहीं होती है। दोनों एक ही गाँव में रहते हैं। पर उन्हें एक-दूसरे की फिक्र नहीं है। वह होनी चाहिए। इस तरह हम गाँव में प्यार नहीं रखते हैं—इस-लिए गाँव में कोई धंधा नहीं रहता है। हमारी यह कितनी सादी बात है?

रोते आये, हँसते जायँ

हमें खुशी है कि आज यहाँ कुछ लोगों ने जमीन दान दी है। यहाँ इस गाँव में और छोटे-छोटे मालिक हैं। किसीके पास १० तो किसीके पास १५ एकड़ जमीन है। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनके पास जमीन बिलकुल नहीं है। उनका क्या होगा? यह फिक्र गाँववालों को रखनी चाहिए। हरएक को यह चाहिए कि अपने पास जो भी थोड़ा-सा है, उसमें से उन्हें दे। अपना पेट काटकर दे। हमारा प्यार इस तरह उन्हें मिलता है तो वे हमारे लिए मर-मिटने के लिए तैयार रहेंगे। क्या हम प्यार देंगे तो प्यार पायेंगे? जिंदगी में जितना हो सकता है, उतना प्यार सबपर किया, ऐसा होना चाहिए। इस तरह जो शख्स करेगा, वह मरेगा तो हँसते-हँसते मरेगा और दूसरे लोग उसके लिए रोयेंगे। उसे मरते समय खुशी होगी, भगवान का खयाल रहेगा। हम पैदा हुए तो रोते-रोते पैदा हुए। पर मरते समय हँसते-हँसते जाना चाहिए। जनम के साथ रोया और मरते समय भी जो रोया, उसने सब कुछ खोया। इन्सान पैदा होता है तो वह खुद रोता है, लोग हँसते हैं। मरते समय होना यह चाहिए कि वह हँसता है और बाकी लोग रोते हैं। रोता हुआ आया था, हँसता हुआ चला गया। ऐसा होना चाहिए। तब तो हमने कमाया। नहीं तो सब गँवाया। हम हँसते हुए जायँगे तो आखिरी वक्त यही खयाल रखेंगे कि अब तो हमें परमात्मा से मिलना है, अल्लाह का चेहरा देखना है। हमने जिन्दगी में किसीको तकलीफ नहीं दी है, इसलिए अब हम अल्लाह से मिलने बड़ी खुशी से जा रहे हैं।

इन्सानियत का आधार

हम एक गाँव में रहते हैं तो एक-दूसरे पर प्यार करना हमारा फर्ज होता है। इन्सान का मजहब है—मुहब्बत करना, एक-दूसरे की फिक्र करना। गधा, बैल, कुत्ता आदि क्या कभी एक-दूसरे की फिक्र रखते हैं? नहीं। जानवर कहते हैं कि अपनेको मिला तो बस है। लेकिन इन्सान को इससे तसल्ली नहीं होती। गरमी के दिन हैं। आपके पास एक प्यासा आता है। आप प्यासे हैं और आपके पास बैठा हुआ मैं भी प्यासा हूँ तो बताइये, उस समय आप क्या करेंगे? इसीमें इम्तहान है। मैं प्यासा हूँ, इसलिए मैं ही पानी पी लूँ, यह बात तो बच्चा भी समझता है। पर इसमें इन्सानियत नहीं है। इन्सानियत तो इसमें है कि हमें भले ही तकलीफ उठानी पड़े, पर हम दूसरे की फिक्र करें। दूसरे के लिए तकलीफ उठाना खुशी की बात है, यह मानना चाहिए। घर में खाने का पड़ा है, लेकिन रमजान का दिन है। इसलिए भूख होने पर भी खायेगा नहीं। इसमें जिस्म को तकलीफ होती है, लेकिन मन को तसल्ली होती है। इन्सान को तब तसल्ली होती है, जब वह दूसरे के लिए तकलीफ उठाता है, परमेश्वर के लिए तकलीफ उठाता है। हम बहुत ज्यादा तकलीफ उठाने की बात नहीं करते हैं। अपने पास जितना पानी है, उसमें से कम से कम आधा तो दोगे या नहीं? दर असल होना तो यह चाहिए कि उसने पूरा पानी पी लिया तो भगवान का नाम लेकर हमें बैठना चाहिए। इतना भी हम न करें और हम ही सारा पानी पी लें और प्यासे को तड़पते हुए देखें तो यह इन्सानियत नहीं है।

इसलिए हम कहते हैं कि भाइयो, आपके पास थोड़ी जमीन है तो भी थोड़ा हिस्सा दो, देने में हिचकिचाओ मत। देना

www.vinoba.in

मजहब है। हवा, पानी और सूरज की रोशनी—यह अल्लाह ने उसके बच्चों के लिए पैदा की है। उसी तरह जमीन भी अल्लाह ने पैदा की है। उसपर सबका हक है। गाँव में जो चीज बनती है, वही हम खरीदें—इस तरह गाँव के धंधे हम खड़े रखें। एक-दूसरे पर प्यार करें। यही मजहब है, धर्म है, इन्सानियत है।

हमारा फर्ज

आज हम इस गाँव में गये थे। गाँव में बीस घर हैं। उसमें से तीन जुलाहे के घर हैं। पर उनको कोई काम नहीं है। धंधा बैठ गया है। यह तब तक नहीं होगा, जब तक आप सब एक नहीं होंगे। एक-दूसरे पर प्यार नहीं करेंगे। गाँव में जो पढ़ना जानता है, वह दूसरे को पढ़कर सुनाये। रोज रात को एक घंटा बुजुर्ग लोगों को अच्छी चीजें पढ़कर सुनायें। बच्चों को पढ़ायें। तब गाँव में प्यार रहेगा। इस तरह अपने पास जो है, वह दूसरे को देना सीखना चाहिए। जमीन, बुद्धि, अक्ल, पैसा, ताकत, सब अल्लाह ने दी है—उसका उपयोग गाँव को होता है, यह देखना चाहिए। गाँव के लिए यही हमारा फर्ज है। ० ० ०

किसानों के प्रतिनिधियों के बीच

बारडोली (सूरत) ७-९-'५८

ग्रामदान में भय की तनिक भी गुंजाइश नहीं

पहली बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि ग्रामदान में किसी भी प्रकार का भय नहीं है। अगर ग्रामदान में जरा भी भय हो तो मुझे उसकी तनिक भी जरूरत नहीं है। कोई यह सिद्ध कर दे कि ग्रामदान में रत्तीभर भी भय है तो मैं ग्रामदान को बिलकुल नहीं चाहूँगा। कारण मुझमें ग्रामदान का ऐसा कोई आग्रह नहीं है। मुझमें सत्याग्रह है। अगर ग्रामदान संभव न हो, उसमें सत्यता और निर्भयता न हो तो भले ही येलवाल में इकट्ठी नेताओं की जमात ने खूब सोच-विचारकर आशीर्वाद दिया हो तो भी मैं उस सम्मति की बहुत कीमत नहीं मानूँगा। यों जब मैं विचार करता हूँ तो स्वाभाविक तौर पर मेरे मन में यह आता है कि जो लोग येलवाल में आये थे, वे मेरे जैसे हवा में उड़नेवाले नहीं थे। वे लोग बिलकुल जमीन पर चलनेवाले माने जाते हैं। उनमें विभिन्न पार्टियों के नेता, नम्बूदरीपाद, नेहरू, पंत, ढेबरभाई, मोरारजीभाई और ऐसे दूसरे सारे भी व्यवहारपरायण, व्यवहारकुशल, व्यवहारवेत्ता और व्यवहार को महत्त्व देनेवाले थे। इसलिए उनके निवेदन से मुझे बहुत बल मिला है। फिर भी मैं वह बल छोड़ने के लिए तैयार हूँ। अगर यहाँके किसानों का विचार मुझे समझाया जाय और मेरे ध्यान में आ जाय कि ग्रामदान में एक छिपा हुआ भय है, जो आज तक प्रकट नहीं हुआ तो मुझे ग्रामदान का कुछ भी आग्रह नहीं है। मैं ग्रामदान का आग्रह लेकर यहाँ नहीं आया हूँ। इस अर्थ में मैं मुक्त पुरुष हूँ। मेरे मन में किसी तरह की कोई भी ग्रंथी नहीं है, सत्य ग्रहण करने में मेरा मन अत्यन्त मुक्त, खुला है।

पैदावार : व्यक्तिगत जिम्मेदारी का प्रश्न

दो-तीन दिन हुए मैंने गुजरात में प्रवेश किया है। तबसे ग्रामदान में किस तरह सबके लिए अभयदान है, इस बारे में मैं बता रहा हूँ। बहुतों ने बहुत-सी शंकायें उठायी हैं। उनमें सबसे बड़ी शंका यह थी कि व्यक्ति की मालकियत न रहेगी तो पैदावार कम होगी। मैं इतना ही सुझाना चाहता हूँ कि पैदावार व्यक्तिगत मालकियत नहीं, व्यक्तिगत जिम्मेदारी का सवाल है। अगर व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं रहेगी तो पैदावार कम होगी, उसमें जरा भी सन्देह नहीं है। समुदाय या व्यक्ति गैरजिम्मेदार होगा तो पैदावार घटेगी, यह सर्वथा स्पष्ट है, जिम्मेदारी और मालकियत—दोनों में आप कोई फर्क करते हैं या नहीं, यह आप अपने ही अनुभव से देखिये। कानून द्वारा घर में मालकाना हक घुस जाने से घर का स्वास्थ्य बढ़ा है या घटा, यह आप अपने अनुभव से ही कहेंगे। भाई का हक, बहन का हक, माता-पिता का हक—ये सारे हक आज गृहक्षेत्र में घुस गये हैं, इसीलिए कोर्ट कचहरी में घर के झगड़े जाते हैं।

मालिकाना हक से ही घरेलू झगड़े

मुझसे एक सवाल पूछा गया कि जब एक ही घर में भाई-भाई के बीच झगड़ा होता है तो सारे गाँव के लोग एक होकर कैसे रह सकेंगे? भाई का भाई के साथ जिस कारण मेल नहीं बनता, मैं उसी कारण को तोड़ना चाहता हूँ, वह कारण है मालकियत। मान लीजिये, घर में मालिकाना कानून ही नहीं है, तब घर में स्नेहभाव रहता है या नहीं? मैं स्पष्ट और निश्चित रूप में कह सकता हूँ कि अगर घर में कानून और हक नहीं होते तो निश्चित ही गृह-व्यवस्था स्नेहमय होती, जो आज नहीं है, आज तो घर छिन्न-विच्छिन्न हो गया है।

बिहार की संयुक्त परिवार-प्रथा से लाभ

आपको बिहार का एक दृष्टान्त देता हूँ! वहाँ संयुक्त परिवार-प्रथा है। एक-एक परिवार में कम से कम २५,३०,४० मनुष्य तो होते ही हैं, कहीं-कहीं १०० भी हो जाते हैं। परिणामस्वरूप वहाँ "मैं" शब्द ही नहीं है। हरएक बिहारी "हम" ही बोलेगा, "मैं" नहीं। बिहार के साहित्य में कहीं भी "मैं" नहीं, "हम" ही है। जब कि उत्तरप्रदेश में "हम" अभिमानसूचक माना जाता है। बिहार में वह अत्यंत निरहंकारी का दर्शन है। इसके फलस्वरूप वहाँ सार्वजनिक काम के लिए एक-एक घर से एक-एक कार्यकर्ता मिल जाता है। उसकी आर्थिक और बच्चों की तालीम की व्यवस्था घर के दूसरे लोग कर लेते हैं। मैं मानता हूँ कि सूरत जिले में कार्यकर्ताओं की संख्या जितनी अच्छी है, उनसे दस गुना अधिक कार्यकर्ता बिहार के किसी भी जिले में मिलते हैं। कारण वहाँ संयुक्त परिवार है। मैं भी उन संयुक्त परिवारवालों से कहता था कि आप अपने परिवार से एक मनुष्य का दान मुझे दीजिये और उसका बोझ आप लोग उठा लीजिये तो अच्छा काम होगा। इस प्रकार की योजना मैंने जब राजेन्द्रबाबू के निकट प्रकट की, तब वे कहने लगे—"इसका उदाहरण तो मैं खुद हूँ। मेरी परिवार-व्यवस्था मेरे भाई न करते तो देश-सेवा के लिए मैं उपलब्ध ही न हो पाता।" तो मैं कहना चाहता था कि बिहार की संयुक्त परिवार की प्रथा के लाभ भी बहुत हैं।

www.vinoba.in

सीलिंग के भय से संयुक्त परिवार का विघटन

अभी बिहार सरकार ने जाहिर किया है कि सीलिंग बनाना है। आज तक कुछ नहीं हुआ। सात-आठ साल से यह आंदोलन चल रहा है और उतने ही दिनों से यह घोषणा भी चल रही है। फिर लोग ऐसे मूर्ख नहीं कि बैठे रहें और ७-७॥ साल तक अपनी जमीन अपने ही नाम पर रहे। बस, उन्होंने उसे भाई-भाई और लड़कों में बाँट दिया है। अभी तो और भी बाँटने का अवकाश है। फिर जब सीलिंग का कानून बनेगा तो वह कागज पर ही धरा रहेगा। उससे ज्यादा कुछ नहीं होगा, किसीको जमीन नहीं मिलेगी। मैं पूछता हूँ कि यह आत्मवंचना है या परवंचना, इसका निर्णय राज्यकर्ताओं को करना है। फिर भी इसमें वंचना है, इसमें कोई शक नहीं। अभी भी सीलिंग की बात चल रही है और वह हो जाने के बाद ही कोर्ट में मुकदमे और "लिटीगेशन" चलेंगे। उसके पीछे सरकार का जो खर्च होगा, उसमें दूसरी जमीन खरीद सकते हैं। इससे इतना ही हुआ कि भय पैदा हो गया। लोकतंत्र में विलम्ब क्षम्य हो जाता है। अगर दूसरी कोई राज्यव्यवस्था होती तो मालिकों पर एकदम बोझ पड़ता और दो महीने में यह काम हो जाता। लोकतंत्र और कानून की शक्ति का मेल ही नहीं है। लोकतंत्र का अच्छा से अच्छा लाभ लेना हो तो अहिंसा को स्वीकार करना होगा। उसमें छीनकर या लूटकर लेने की ताकत नहीं है। परिणाम-स्वरूप बिहार का संयुक्त परिवार बिखर रहा है, एक परिवार में २०८ एकड़ जमीन और पाँच व्यक्ति हों तो हरएक को ३०-४० एकड़ जमीन मिल सकती है। मैंने उनसे कहा कि "आज आपने यह नाटक किया है, पर कल आपको यही महँगा पड़ेगा। जिन भाइयों को अलग-अलग मालकियतें दे दीं, वे कल सचमुच अलग हो जायँगे। फिर संयुक्त परिवार का लाभ मिट जायगा, यह ठीक समझ लो और सरकार को बेकार करने के उद्देश्य से ऐसा काम मत करो तथा इसी तरह लोगों को समझाओ।"

निर्भयता ग्रामदान से लाख गुना श्रेष्ठ

मैं कहना यह चाहता हूँ कि सरकार के कानून से जो भय पैदा होता है, उसका मेरे साथ कोई संबंध नहीं। कुछ लोगों को लगता है कि एक तरफ सरकार और दूसरी तरफ विनोबा, दोनों का हमपर बोझ पड़ रहा है और हम कैंची में पकड़े गये हैं। लेकिन यह गलत कल्पना है। इसमें सरकार तो कुछ करना नहीं चाहती। उसके करने का आभासमात्र है। यह है उसकी स्थिति। फिर मेरी स्थिति यह है कि उसमें और मुझमें मूल में ही बहुत फर्क है। वह यह कि मुझे भय नहीं, निर्भयता चाहिए। ग्रामदान से लाखगुनी योग्यता निर्भयता में है। निर्भयता की तुलना में ग्रामदान थोड़ा भी नहीं टिकेगा। फिर भी मैं मानता हूँ कि ग्रामदान में ज्यादा से ज्यादा निर्भयता है। इसीलिए उसका आग्रह रखता हूँ। अगर उसमें भय या डराने की बात हो तो मैं कभी भी ग्रामदान का आग्रह न करूँगा।

शत-प्रतिशत प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर

आपके सामने कांग्रेस, समाजवाद, साम्यवाद आदि अलग-अलग पक्षों की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। इन सबके साथ अपनी सर्वोदय-विचार-श्रेणी को, जैसा कि मैं समझता हूँ, दृष्टांत द्वारा आपके सामने स्पष्ट करना चाहता हूँ। कहा जाता है कि समाजवादी राज्यसत्ता में धीरे-धीरे व्यक्ति की सत्ता, व्यक्ति का व्यक्तिगत धंधा, प्राइवेट सेक्टर कम होता जायगा और पब्लिक सेक्टर बढ़ता जायगा। ऐसा होते-होते एक दिन व्यक्तिगत धंधा बिलकुल क्षीण हो जायगा। यह समाजवाद का स्वरूप है, ऐसा बहुत समाजवादी समझते हैं। इसमें काँग्रेस भी आती है। उसका भी समाजवाद का मंत्र है। इससे पूँजीवादी घबरा उठते हैं। परन्तु उनसे कहा जाता है कि "इसमें डरने, घबड़ाने का कोई कारण नहीं है। "एक्स" याने प्राइवेट सेक्टर, "वाई" याने पब्लिक सेक्टर (एक्स + वाई = प्लानिंग। प्राइवेट सेक्टर वाई पब्लिक सेक्टर प्लानिंग)। जब पब्लिक सेक्टर बढ़ेगा, तब प्राइवेट सेक्टर कम होता जायगा और दोनों मिलकर १०० प्रतिशत हो जायँगे। प्लान "एक्स"–५० और "वाई"–५०। फिर ऐसा होगा कि एक्स ४० होगा तो "वाई" ६० होगा। इस तरह प्राइवेट सेक्टर मिटता जायगा तो पब्लिक सेक्टर बढ़ता जायगा। यह है हमारी योजना। इसमें खास ज्यादा घटाना नहीं है।" मेरी दृष्टि इससे बिलकुल उल्टी है। मैं कहता हूँ कि प्राइवेट सेक्टर १०० प्रतिशत चाहिए और पब्लिक सेक्टर भी १०० प्रतिशत और दोनों मिलकर १०० प्रतिशत मिल जाना चाहिए। इसलिए एक्स १०० + वाई १०० = १००। बंबई युनिवर्सिटी में आपको ऐसा गणित किसीने नहीं सिखाया होगा। यह नया गणित है, यह तो मैं रोज सुबह बोलता हूँ–"पूर्णमदः पूर्णमिदम्"। माने यह भी १०० है और वह भी १०० है और दोनों मिलकर भी १०० है।

"प्राइवेट सेक्टर" खूब बढ़े और १०० प्रतिशत हो जाय, किन्तु हर प्राइवेट सेक्टरवाला समझ ले कि मैं समाज का प्रतिनिधि हूँ और ट्रस्टी भी। अगर वह यह समझकर काम करेगा तो सबका सब "प्राइवेट सेक्टर" "पब्लिक सेक्टर" होगा। पब्लिक सेक्टर को डरने की जरूरत नहीं है कि प्राइवेट सेक्टर फूलेगा और फलेगा और न प्राइवेट सेक्टर को ही डरना चाहिए कि पब्लिक सेक्टर हमपर आक्रमण करेगा। सर्वोदय की योजना ऐसी ही अनाक्रमणकारी योजना है।

परिपूर्ण की निष्पत्ति की योजना

सर्वोदय में अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि हैं ही, परन्तु राजनीति भी है, जिसे मैं "लोकनीति" कहता हूँ। आप सभी स्वतंत्र हैं। मैं सबको अत्यन्त निर्भय करना चाहता हूँ। समझ लीजिये, एक गाँव १००-२०० की बस्ती का है। बहुत छोटा नहीं, पर २००० की बस्ती की एक इकाई बने और यह स्वराज्य की इकाई रहे, इसलिए कि उसमें ग्रामस्वराज्य का प्रयत्न होगा। उसमें सरकार का ऐसा कोई कानून लागू न होगा, जो वहाँकी ग्रामसभा का मान्य न हो। सब मिलकर ग्रामस्वराज्य की योजना बनायें और उसे सरकार मान्य करे। ग्रामदान ग्रामस्वराज्य की स्थापना है। इसमें प्रत्येक गाँव पूर्ण होगा और इसी तरह सब मिलकर सारा देश, सारा विश्व परिपूर्ण होगा। पूर्णों का योग करके परिपूर्ण की निष्पत्ति ही हमारी योजना है।

समर्थों का परस्परावलंबन ही अपेक्षित

बहुत से लोग मुझसे कहते हैं कि सर्वोदयवाले एकदम एकांगी होते हैं। जब सारी दुनिया एक होकर परस्पर आधार रखने का समाजशास्त्रीय तत्त्व समझाती है तो आप स्वयंपूर्णता की बात करते हैं। लेकिन मैं सहकार नहीं चाहता, ऐसी बात नहीं, किन्तु आज जो अंधपंगु-न्याय चलता है, मैं वैसा सहकार नहीं चाहता। आज तो गाँव में अंधे लोग हैं और शहर में लंगड़े। शहरवाले अंधे के कंधे पर बैठते हैं और अंधे लंगड़ों को जिधर ले जायँ, उधर जाते हैं। गाँव और शहरों में ही ये दो

www.vinoba.in

विभाग पड़ गये हैं, ऐसी बात नहीं। गाँव में भी ऐसे दो विभाग पड़ गये हैं। वहाँ भी कुछ अंधे तो कुछ लंगड़े होते हैं और वे सहकार करते हैं। लोग उसे "परस्परावलंबन" कहते हैं। किन्तु यह अक्षमों का, असमर्थों का परस्परावलंबन है, समर्थों का नहीं। मैं समर्थों का परस्परावलंबन चाहता हूँ। आखिर परमेश्वर ने हम, आप, सबको हाथ, पाँव, नाक, कान आदि दिये हैं। कुछ लोगों को पूर्वकर्म के कारण कुछ कम तो उसे छोड़ दीजिये, किन्तु साधारण रीति से बहुतों को सब शक्तियाँ दी हैं। फिर उनसे कहा जाय कि आपमें कम से कम जितनी पूर्णता चाहिए, उतनी है। अतः अब एक-दूसरे के सहयोग से विविध रस लीजिये। नरसिंह मेहता गाता है "विविध रचना करी, अनेक रस लेवाने, शिव थकी जीव थसे एज आशे।" शिव से जीव इसी आशा से हुआ है कि अनेक रस ले सके और परस्पर सहकार ले परिपूर्ण बने। इसीलिए उसने विविध रचना की है, किन्तु वह अपूर्ण नहीं है। यह भी पूर्ण है और वह भी पूर्ण। इसमें एक विशेष शक्ति है तो उसमें एक शक्ति। यह सब पूर्ण एकत्र होकर और परस्पर सहकार कर परिपूर्ण बनें, यही परमेश्वर की योजना है।

ग्रामदान का अर्थ

मैं चाहता हूँ कि ग्रामस्वराज्य की कम से कम इकाई ही ग्रामस्वराज्य का आदर्श हो जाय। उसमें सबका समाधान होगा। स्वराज्य में सबको समाधान चाहिए। समाधान के बिना स्वराज्य नहीं। सबको समाधान मिलने, रोजी, रोटी और शिक्षण भी मिलने की योजना गाँव के लोगों को मिलकर करनी चाहिए। इसे वे जिस तरह करेंगे, मैं मंजूर करने के लिए तैयार हूँ। इसी-को मैं ग्रामदान कहता हूँ।

मालकियत की योजना हमारे देश की नहीं

मैं मानता हूँ कि यह तो जमीन संबंधी आज की योजना है, यह कभी न टिकेगी, क्योंकि वह अपने देश की योजना नहीं है। हमारे देश में जमीन की मालकियत थी ही नहीं। मैं संस्कृत साहित्य के दर्शन पर से कहता हूँ कि पहले गाँव-गाँव में जमीन थी और कुछ लोग खेती करते थे, कुछ लोग बढ़ई, लुहार, बुनकर, कुम्हार आदि कारीगर और शिक्षक वगैरह थे। उन सबको क्या मिलता था? इसके लिए सारे भारत में एक ही योजना थी। बढ़ई जितना काम हो, कर देगा, उसका हिसाब नहीं रहेगा। जिसके घर में काम होता, वहाँ जाकर वह काम करता था और जहाँ नहीं होता, वहाँ नहीं जाता। जहाँ ज्यादा काम रहता, वह ज्यादा काम करता था। किन्तु उसे फसल आने पर सब घरों से मिलती थी। इसका अर्थ यही है कि जमीन की मालकियत सबकी थी, जो काश्त न कर समाज के उपयुक्त दूसरा काम करता था तो उसका जमीन पर उतना ही हक माना जाता था, जितना कि किसान का। गाँव में ज्यादा फसल होती तो ज्यादा हिस्सा मिलता और कम होती तो कम हिस्सा मिलता। कोई भी शिकायत नहीं थी। सभी किसान के सुखों में सुखी और उसके दुःख से दुःखी होते थे। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जमीन की मालकियत नहीं थी, इसके सिवा दूसरा कोई अर्थ नहीं।

हरएक मानव का जमीन से सम्बन्ध हो

आप यह मानते हों कि ऐसा मेरा आग्रह है कि सबको जमीन मिले तो आप मुझे ठीक समझे हैं। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य का जमीन के साथ सम्बन्ध होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को दो-तीन घण्टे खेती का काम करना चाहिए। इसका अर्थ यही है कि आदर्श समाज-रचना में जैसा प्रत्येक मुँह का खेती के साथ सम्बन्ध है, वैसे ही प्रत्येक हाथ का भी होना चाहिए। हरएक के पास आधा एकड़ खेती तो होना ही चाहिए। घर में तरकारी के लिए थोड़ी जमीन होनी चाहिए। फिर हरएक मनुष्य मलमूत्र अपने खेत में डाले और अपनी खेती को समृद्ध बनाये। प्रत्येक मनुष्य को आधा एकड़ जमीन मिलने के बाद बाकी खेती में कुछ किसान और कुछ कारीगर बनेंगे। कारीगरों का जमीन पर किसान-जितना ही हक होने से सबका सुख-दुःख जुड़ा रहेगा। आज तो फसल का संबंध कारीगर से है ही नहीं। वह तो मजदूरी करके हिसाब ही माँगता है। किन्तु खेती पर आधार रखकर उसका हिस्सा उसे मिले तो किसीके काम का हिसाब नहीं रखा जायगा। कहिये, पहले सारे भारत में ऐसी अव्यवस्था थी या नहीं? परन्तु पहले ऐसा था, इसलिए ऐसा होना चाहिए, ऐसा मैं नहीं चाहता। कारण इस विज्ञानयुग में कम-ज्यादा फेर-बदल कर सकते हैं।

इसलिए ग्रामदान के विषय में निर्भय होकर गाँव की चिन्ता करने लगें। हरएक को काम या खाना मिले, गाँव में एक भी भूखा न रहे, हरएक को काम दें और न दे सकें तो खाना दें। आप सब एक होकर निश्चित कीजिये कि ग्रामसभा में आकर किसीको भी काम माँगने का अधिकार है। वह देने की जिम्मेदारी हमारी है और न दे सकें तो खिलाने की जिम्मेदारी भी हमपर है। तब तुरन्त ही आपके ध्यान में आयेगा कि खेती का थोड़ा हिस्सा दिये बगैर आप छूट नहीं सकते। फिर वह खेती ऋषि-खेती हो या बैल की, बिजली से हो या और किसी यन्त्र से। मुझे किसी भी यन्त्र के साथ नफरत नहीं है।

मैं विज्ञान का अत्यन्त समर्थक

कुछ लोगों का यह खयाल है कि बाबा मिल से अंबर को ज्यादा पसंद करते हैं, अम्बर से छोटे चरखे को पसन्द करते हैं और चरखे से तकली को। अगर लकड़ी की तकली हो तो वह नाचेगा और तकली से कातने के बदले अंगुली से कात सकें तो उसे स्वर्ग ही मिलेगा। ऐसे माननेवाले भ्रम में हैं, इतना ही नहीं, मैं तो दावे के साथ कह सकता हूँ कि पिछले दस सालों में विज्ञान के लिए मैंने जितना आग्रह रखा, उतना आग्रह रखनेवाला दूसरा कोई शख्स मैंने नहीं देखा। विज्ञान आत्मज्ञान की बराबरी की शक्ति है। दोनों मिलकर काम होगा, यह तो मैं हमेशा कहता आया हूँ। इसलिए अहिंसा चाहता हूँ। मैं विज्ञान को बढ़ाना चाहता हूँ। अहिंसा के बिना विज्ञान अत्यन्त खतरनाक है। विज्ञान क्या है, अभी तो हम बहुत चीजें नहीं जानते। मैंने एक वैज्ञानिक से पूछा था कि स्वप्न क्यों आता है? उसने कहा—"मुझे मालूम नहीं।" "निश्चित तरीके से फलाना स्वप्न नहीं आता" ऐसा इस बारे में कोई वैज्ञानिक कुछ नहीं कह सकता। आज मेरे सिर में दर्द ही तो क्यों है, यह मुझे मालूम नहीं। डॉक्टर को भी मालूम नहीं। वह तो आकर नाहक कहीं नोचता है। यह देखेगा, वह देखेगा और ऐसी दवा देगा, जिसके गुण का खुद को पूरा ज्ञान नहीं। सिवा वह उसे ऐसे शरीर में डालता है, जिसके बारे में भी उसका ज्ञान कम है। इसलिए उस शरीर के साथ वह प्रयोग करता है। पहले कहेगा "मलेरिया है" और किनाइन देगा। फिर मलेरिया से टाइफॉइड, टाइफॉइड से पेरेलेसिस होगा और बीमार मर जायगा तो फिर कुछ देखने का ही नहीं रहेगा। क्या आप इसे ही विज्ञान कहेंगे?

www.vinoba.in

प्रेम और करुणा आवश्यक

मुझे विज्ञान की अत्यन्त तीव्र इच्छा है, इसीलिए मैं अहिंसा की तीव्र उपासना करता हूँ। बाकी करुणा तो मैं कहाँसे लाऊँ? गांधीजी के पास गया तो प्रेम और करुणा का "पाथेय" नहीं ले गया था। मैं तो सत्यनिष्ठ बनकर उनके पास पहुँचा था। वैज्ञानिक मन का लक्षण है कि वह सत्य को ही सर्वेसर्वा मानता है। वेद, उपनिषद पढ़कर मैं "सत्य" को ही एक मुख्य प्रमेय मानता हूँ। परन्तु सत्य की उपासना, सत्य की खोज प्रेम और करुणा के बिना हो नहीं सकती। इसलिए करुणा और प्रेम मेरे हृदय में पैठ गया और यह करुणा ही मुझे—मैं कबूल करता हूँ, मेरे शरीर में दूसरी कोई शक्ति नहीं—घुमाती है। सात-साढ़े सात सालों से सिर्फ कारुण्य की शक्ति ही मुझे घुमा रही है। परन्तु यह करुणा मुझमें पीछे से आयी। मेरी मूल प्रकृति तो सत्य, विज्ञान और गणित के शास्त्र की है।

अहिंसा और विज्ञान के योग से जमीन पर स्वर्ग

मैं शास्त्र और विज्ञान खूब बढ़े, ऐसा चाहता हूँ। अहिंसा और विज्ञान का योग हो जाय तो दुनिया में स्वर्ग आयेगा और यदि हिंसा और विज्ञान का योग हो जायगा तो दुनिया मिट जायगी। इसलिए विज्ञान अहिंसा के साथ शादी करे, हिंसा के साथ नहीं, यही मेरी चिंता है। विज्ञान की चिंता के लिए ही मैं अहिंसा का आग्रह रखता हूँ। अन्यथा मैं अहिंसा का आग्रही नहीं था। अभी भी कोई मुझे युक्ति बताये कि अहिंसा के बिना विज्ञान जी सकता है तो मैं अहिंसा को आज्ञा देने के लिए तैयार हूँ कि तू जा सकती है। पर मैं मानता हूँ कि अहिंसा के बिना विज्ञान टिक ही नहीं सकता। इसलिए मुझे किसी भी यंत्र का विरोध है, ऐसा नहीं। सारे के सारे यन्त्र ला सकते हैं। उनसे उपज बढ़े तो सब यन्त्रों का मेरी ओर से स्वागत है।

हरएक को काम दें या खिलाने का भार उठायें

अब इस विषय में आपको निर्भय होकर ग्राम-स्वराज्य की योजना करनी चाहिए। कम-से-कम इतनी जिम्मेवारी लेनी चाहिए कि गाँव में हरएक व्यक्ति को हम पूरा काम देंगे और नहीं दे सकेंगे तो उनको खिलायेंगे। इतना अगर आप ग्रामदान में जमीन का बँटवारा किये बगैर भी कर सकें तो मुझे चलेगा। अब यह किस तरह से होगा, यह आप सोचिये और मुझे बताइये। ◆◆◆

[इसका पूर्वांश गतांक में पृष्ठ ८१० पर प्रकाशित है।]

सूरत जिला-कार्यकर्ता सभा

कठौर (सूरत) ३०-९-'५८

निधि का आश्रय छोड़ने से नारायण-परायणता आयेगी

[आरंभ में जिले के प्रमुख कार्यकर्ताओं के भाषण हुए। अंत में संध्या समय पर विनोबाजी ने चंद शब्द कहे]

यह संध्या का, ध्यान का समय है। इसलिए मैं प्रकटरूप में ध्यान करके संतोष मान लूँगा। आज की सभा में कांग्रेस के एक भाई ने आश्वासन दिया। उस बारे में मुझे इतना ही कहना है कि उससे मुझे संतोष हुआ। मुझे तो प्रेम और सहयोग के अलावा दूसरी कोई चीज नहीं चाहिए। इसलिए जो आश्वासन उन्होंने मुझे दिया, वह मेरे लिए पर्याप्त है।

इन दिनों रचनात्मक कार्य संस्थाओं के द्वारा चलता है। मैंने स्वयं भी संस्थाओं में काम किया है, यद्यपि मेरा काम करने का ढंग दूसरे प्रकार था। इसलिए कोई भी काम करते समय मैं खुद को काम में इस तरह बँधा हुआ नहीं रखता था कि जिससे मैं मुक्त चिन्तन न कर सकूँ या कार्य में मुक्त न रहूँ। संस्थाओं के काम का मुझे अनुभव है। उनमें मैंने कुछ काम किया है और उनमें जो दोष रहे, उनका भी भान मुझे है। मैं मानता हूँ कि हमारी संस्थाएँ नारायणपरायण होनी चाहिए। वैसे आज भी उनकी आजीविका लोगों के आश्रय पर ही निर्भर है। स्वराज्य के बाद कई संस्थाएँ सरकार से मदद लेती हैं। सरकार की मदद हम दूसरे-तीसरे काम में भले ही लें, परन्तु कार्यकर्ताओं की आजीविका का भार सरकार की मदद पर रहेगा तो उससे नारायणपरायणता नहीं आयेगी। संस्थाएँ निधि पर, संचित निधि पर रहेंगी तो साक्षात् जनतारूप नारायण का आधार नहीं होगा। इसलिए दूसरे कामों में भले ही सरकार की या निधि की मदद लें, किन्तु कार्यकर्ताओं के भरण-पोषण का आधार उनपर नहीं रहेगा। तब अपनी संस्थाओं में प्राणतत्त्व दाखिल होगा। कुछ थोड़ी संस्थाएँ ऐसी हैं, जो आत्मनिर्भर हैं, कुछ संस्थाएँ कुछ उद्योग करती हैं और उससे जो मिलता है, उसपर उनके कार्यकर्ता निर्भर रहते हैं। इस तरह जिनका आधार श्रम अथवा उद्योग पर रहता है, उनमें परावलंबन का अवगुण तो नहीं आता है, परंतु मुझे यह भी गौण मालूम होता है। इसलिए ऐसी संस्थाएँ स्वावलम्बी हों तो भी नारायणावलम्बी नहीं होती है। इसमें काम करनेवाले आलसी नहीं होते हैं, दिनभर काम करते हैं, परन्तु वे अपने ही काम में मशगूल रहते हैं। जनता की परवाह करने की कोई जरूरत उन्हें महसूस नहीं होती है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि हमारे सेवक साक्षात् लोकसम्मति पर ही अपना आधार रखें और नारायण पर ही उनका जीवन निर्भर रहे।

इसका मतलब यह नहीं कि वे श्रम न करें, उन्हें तो खूब श्रम करना चाहिए। परंतु वे अपने श्रम पर, श्रम से जो पैदा होगा, उसीपर निर्भर रहें। यह विचार मुझे संकुचित मालूम होता है। अपने खुद के लिए उत्पादन करना, यह सर्वोदय-विचार नहीं है। सर्वोदय-विचार कहता है कि हम समाज के लिए उत्पादन करें तथा उसे समाज को समर्पण करें और समाज की तरफ से जो मिले, वही लें। कई लोग सूत कातकर अपने लिए कपड़ा बना लेते हैं, आरंभ में यह काम अच्छा ही माना जायगा। वैसे उसमें कोई दोष नहीं है, परन्तु मान लीजिये कि मैं तीस नम्बर का सूत कातता हूँ तो मैं वही महीन कपड़ा पहनूँ, यह शोभा नहीं देगा। इसलिए मुझे अपना सारा सूत समाज को दान देना चाहिए और समाज की तरफ से जो मिले, चाहे वह मोटा कपड़ा क्यों न हो वही लेना चाहिए। मुझे महीन कपड़ा नहीं चाहिए। इसलिए मैं मोटा सूत कातूँगा तो वह उचित नहीं होगा। मैं महीन सूत कात सकता हूँ तो मुझे कातना चाहिए और समाज की तरफ से मिलनेवाला मोटा कपड़ा पहनना चाहिए। यह बात मैं सामान्य गृहस्थों के लिए नहीं कह रहा हूँ। लेकिन कार्यकर्ताओं के लिए, संस्थाओं के लिए कह रहा हूँ।

www.vinoba.in

इस तरह सरकार पर या निधि पर अवलंबन मैं पसंद नहीं करता हूँ। इस युग में निधि पर अवलंबित रहने से काम नहीं चलेगा। इन दोनों से स्वावलंबन का स्थान ऊँचा है, परन्तु वह भी संकुचित विचार है। गीता कहती है कि जो अपने खुद के लिए रसोई बनाकर खाता है, वह पाप खाता है। इसका अर्थ मैं यह समझा हूँ कि सेवक अपना सब कुछ समाज को समर्पण करे और समाज की तरफ से जो मिले, उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करे। इस वृत्ति से कार्यकर्ता और संस्थाएँ अपना काम चलायेंगी तो उस कार्य में जान आयेगी।

यह ध्यान का समय है, इसलिए मैंने प्रकट चिन्तन, प्रकट ध्यान किया है।

पड़ाव पर पहुँचने पर

खाँडवारा १६-९-'५८

एक ओर सरकार, दूसरी ओर जनशक्ति

स्वराज्य से पूर्व हम लोग जो कुछ काम करते थे, वे सभी जनशक्ति से चलते थे। बिहार में भूकम्प हुआ तो हममें से कितने ही लोग वहाँ दौड़कर गये। वहाँ जनशक्ति से ही काम हुआ। गुजरात में भीषण बाढ़ आयी तो वहाँ भी कई नेता दौड़कर गये, इसके सिवा स्थान-स्थान पर खादी-केन्द्र, आदिवासी-केन्द्र, हरिजन-सेवा आदि सभी काम जनशक्ति से चलते रहे। उस समय सरकार का इन सबसे विरोध था। ये काम करते हुए हम लोग भी फूल जाते थे। कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास निर्माण हो गया था। आगे चलकर स्वराज्य प्राप्त हुआ। हमारी सरकार के हाथ में ये सारे काम आ गये। बहुत से काम स्वयं सरकार करने लगी। कृषि-सुधार, सड़क-निर्माण, नवीन-उद्योग-संचालन, स्कूल और पुलों का निर्माण जैसे काम, जिन्हें लोक-सेवा के काम कहा जाता है, सरकार द्वारा होने लगे।

सब कुछ सरकार करे तो जनशक्ति कैसे बढ़ेगी ?

किन्तु अगर सभी काम सरकार ही करने लगे तो लोग कभी खड़े नहीं हो सकते। सरकार के काम करने से लोगों को सुख अवश्य मिलेगा, फिर भी उन्हें स्वराज्य का अनुभव, आत्मशक्ति का अनुभव कभी न होगा। माँ यदि बच्चे को दूध पिलाती है तो बच्चा सुखी अवश्य होगा, पर स्वावलंबी नहीं। वह स्वावलंबी तभी होगा, जब अपने पैरों खड़े होकर मेहनत से अपना जीवन चलाये, ऐसा उद्योग उसके माता-पिता करें। इसी तरह सरकार के काम करने पर लोगों को सुख मिलने के बावजूद उनमें आत्मनिष्ठा न रह पायेगी, जनशक्ति न बढ़ेगी।

लोग स्वतंत्र रूप से अपने काम करें

इसलिए अब आवश्यकता इस बात की है कि लोग स्वतंत्र रूप से अपने काम करें। उसीसे लोकशक्ति निर्माण होगी। जिस तरह ७-७॥ वर्षों से भूदान का काम चल रहा है, उससे आज तक ४० लाख से ऊपर जमीन प्राप्त हुई है। उसमें ८-१० लाख एकड़ जमीन वितरित भी हो चुकी है। हजारों रुपयों का सम्पत्तिदान मिला है। चार हजार ग्रामदान भी मिले हैं। अब उस जमीन में कुएँ बना देना, सड़क बना देना, यह सारी ऊपरी मदद सरकार की हुआ करती है। लेकिन सारे काम इसमें लोगों ने ही किये हैं। यह सारा दान कानून से नहीं मिला है। अभी-अभी अक्राणी-महाल में जो ग्रामदान मिले हैं, वे सभी जनशक्ति से ही मिले हैं।

दोनों शक्तियों का संगम अपेक्षित

एक ओर से सरकार काम करे और दूसरी ओर से जनशक्ति बढ़ती रहे। यहाँ ऐसा ही काम होना चाहिए। संतोष की बात है कि यहाँ ऐसा ही काम चल रहा है। यहाँ दोनों शक्तियों का संगम हो गया है। लोगों का उत्थान भी होना ही चाहिए। सरकार की मदद का अर्थ यह कि लोगों को सरकार ही नियुक्त करती है और उनका वेतन आदि भी वही तय कर देती है। इससे लोगों के हाथ में कुछ भी नहीं रह पाता। इसलिए दोनों हाथों ताली बजनी चाहिए। बम्बई सरकार ने ऐसा ही कुछ प्रयोग करने का तय कर इस तरह के केन्द्र चलाये है। खाँडवारा का यह केन्द्र भी इन्हींमें से एक है। इसे मैं जानता हूँ। इसी तरह रत्नागिरि जिले में कणकवली के केन्द्र और गुजरात के केन्द्र को मैं जानता हूँ। यहाँ बालूभाई काम करते थे। कणकवली में अप्पासाहब पटवर्धन हैं और गुजरात में जुगतराम भाई हैं। सभी हमारे ४०-४० साल के मित्र हैं। इन्होंने ये काम सँभाले हैं। इस तरह की सरकार और जनता दोनों के संगम से ये तीन केन्द्र बड़ी अच्छी तरह चल रहे हैं। इन दोनों के सहयोग के ये स्वतंत्र प्रयोग हैं। सरकार काम करती है, यह इसका एक गुण है। जन-शक्ति से काम होता है, यह दूसरा गुण है। और दोनों की शक्ति मिलकर जो काम होता है, वह इसका तीसरा गुण है। इस तरह तिहरा काम हमारे देश में हो रहा है।

घर-घर सर्वोदय-विचार पहुँचायें

आज यहाँ भूदान के सिलसिले में मैं आया। अब महाराष्ट्र के अन्तिम छोर पर आ गया हूँ। इस पश्चिम खानदेश में महाराष्ट्र की शक्ति लगा देनी है। यहाँ कुछ ग्रामदान हुए हैं। यहाँ सेवा-केन्द्र और शान्तिसेना का भी बड़ा केन्द्र बन सकता है। प्रत्येक घर में सर्वोदय-पात्र होना चाहिए। सारे पश्चिम खानदेश में लोकसम्मति प्राप्त कर लोकशक्ति जगायी जाय, ऐसा प्रयत्न चल रहा है। सरकारी शक्ति के पूरक रूप में जनशक्ति निर्माण करने की योजना भी चल रही है। सरकार और हम दोनों भाई-भाई हैं। हम लोगों का योग इस केन्द्र में होगा, इसलिए इसके आस-पास के गाँवों में और केन्द्र में भी सर्वोदय-विचार का साहित्य प्रचारित किया जाय। घर-घर सर्वोदय-विचार पहुँचाया जाय। गीता-प्रवचन का प्रचार किया जाय। ये सब प्राथमिक कार्य और सर्वोदय-पात्र का भी कोई कार्य हो। इससे कार्यकर्ताओं की भी व्यवस्था हो जायगी।

ये केन्द्र उभयान्वयी और पुल का काम करनेवाले हैं। इन्हें ये काम करने चाहिए। मुझे आशा है कि यह केन्द्र उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा और यहाँ के आसपास के गाँवों में ग्रामस्वराज्य का दृश्य देखने को मिलेगा।

अनुक्रम

१. मेरा काम है यह समझना ··· वसंतपुर २३ मई '५९ पृष्ठ ८११
२. ग्रामदान में भय की ··· बारडोली ७ सितंबर '५८ „ ८१२
३. निधि का आश्रय छोड़ने से ··· कठौर ३० सितंबर '५८ „ ८१५
४. एक ओर सरकार ··· खाँडवारा १६ सितंबर '५८ „ ८१६

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।
www.vinoba.in